दार्शनिक परिप्रेक्ष्य में शैव सम्प्रदाय का उदभव एंव विकास

डॉ अर्चना प्रियादर्शी
सहायक प्राध्यापक, इतिहास विभाग
एस॰ आर॰ पी॰ एस॰ कॉलेज, जैतपुर ।
बी॰ आर॰ ए॰ बिहार विश्वविद्यालय,मुजफ्फरपुर ।

सार–संक्षेप :

भगवान शिव से सम्बन्धित धर्म को 'शैव' सम्प्रदाय कहा जाता है। यह एक प्राचीन धर्म है। जिसका साक्ष्य हमें हड़प्पा एवं मोहनजोदड़ो सभ्यता से ही मिल रहा है। उत्खन्न के दौरान हड़प्पा और मोहनजोदड़ो से अधिक से अधिक संख्या में मिट्टी, सीप और पत्थर के शिव लिंग मिलना उपर्युक्त तथ्यों की पुष्टि करता है। मैके महोदय को खुदाई के दौरान मोहन जोदड़ो से एक ऐसी मुद्रा मिली है, जिस पर अंकित मूर्ति शिव उपासना के विषय की जानकारी देती है।1 इस पुरुष देवता की मूर्ति में तीन मुख और तीन नैत्र है। वह योगासन मुद्रा में एक चौकी पर बैठा हुआ है, उसके बायी ओर एक गैण्डा और एक भैसा तथा दायी ओर एक हाथी एवं एक बाघ खड़ा है। इस मूर्ति के सम्मुख (सामने) दो हिरण है। इस मूर्ति की पहचान पशुपति नाथ के रूप में की गयी है। समस्त जीवधारियों की स्वामी होने के कारण शिव को पशुपतिनाथ, भूतनाथ, नीलकण्ठ, महादेव, रूद्र, त्रयम्बक, शंकर, भोला, उमापति आदि अनेको नाम से जाना जाता है। मुद्रा पर अंकित पुरुष देव की मूर्ति और उत्खन्न से प्राप्त शिव लिंग इस बात की साक्ष्य प्रस्तुत करता है कि सिन्धु सभ्यता के निवासियों का प्रमुख्य देवता शिव ही थे। इस आधार पर हम कह सकते है कि 'शैव' सम्प्रदाय भारत के सबसे प्राचीन सम्प्रदाय थे।

शब्द कुंजी : *मोहन जोदड़ो, कुषाण कालीन, तिस्मुदई नामक ग्रंथ में शिव के पद, संकलित सम्प्रदाय।*

परिचय

पुराणों तथा परवर्ती साहित्य में शिव की योगिराज के रूप में वन्दना की गयी है। वे कैलाशवासी हैं और व्याघ्रचर्य पर ध्यानलीन हैं। उनके सिर पर जटा है, जिसमें द्वितीय का नवचन्द्र सुशोभित है। उनकी इसी जटा जगतपावनी गंगा का उद्‌गम हुआ है1 । पौराणिक कथा के अनुसार स्वर्ग से उतरने के पश्चात् शिव ने गंगा को अपनी जटा में रोक कर उसका वेग कम किया। इसलिए गंगा को शिव की जटा से बहती हुई दिखायी जाती है। शिव का प्रमुख अशस्त्र (आयुध) त्रिशुल है। शिव के ललाट पर स्थित तृतीय नत्रे ज्ञानलोक का प्रतीक है। इसी से उन्होंने कामदेव का दहन किया था। समस्त अनिष्टों के प्रतीक विष को समाहित करने के कारण वे 'विषपायी' कहे जाते है2 । वे कंठ तथा भुजाओं में रूदास धारण करते हैं, इसलिए उनका नाम रूद्र भी है। कई सिक्को पर उनके हाथ में त्रिशुल, वॉये भाग में पार्वती और सम्मुख विराजमान नन्दी को दिखायी गया है। कुषाण कालीन सिक्को पर भी शिक का अंकन त्रिशुलधारी के रूप

में हुआ है। शिव के वाहन नन्दी को वृषभी कहकर भी पुकारा गया है। कुषाण कालीन सिक्को पर शिव के वाहन नन्दी का भी अंकन हुआ है। शिवच का सती एवं उमा के साथ विवाह की रोचक कथा महाकाव्यों एवं पुराणों में मिलती है। कुषाणकालीन सिक्कों पर भी शिव और उमा का चित्रण हुआ है।

खुदाई के दौरान प्राप्त किये गये कुछ मुहरों पर शिव के नर्त्तक रूप को चित्रित किया गया है। चीनी मिट्टी की एक अन्य मुद्रा में योगासीन शिव के दोनों ओर एक–एक नाग और सामने दो नाग बैठे दिखाये गये है।5 यह दवे ता नागधारी शिव के रूप में स्वीकार किया गया है।6 इस तथ्य से भी प्रमाणित होता है कि सिन्धु सभ्यता के निवासी शैव सम्प्रदाय के अनुयायी है। शास्त्रों में एक ही परमतत्व के तीन रूप बताये गये हैं– ब्रह्मा, विष्णु और महेशा ब्रह्म का कार्य सृष्टि की रचना करना है, विष्णु का कार्य सृष्टि का पालन करना है, और शिव का कार्य सृष्टिलय है3 । किन्तु शैव धर्मदर्शन में शिव को स्वयमेव परमतत्व माना गया है और सृष्टि निर्माता, पालनकर्त्ता और लयकर्त्ता तीनों माना गया है। सृष्टिकर्त्ता के रूप में शिव ब्रह्मस्वरूप है और हरिहर के रूप में विष्णु स्वरूप है। शिव परम कारूणिक है। उनमें अनुग्रह तथा प्रसाद गुणों का समन्वय है। उनका उद्देश्य भक्तों का कल्पाण करना है। वे शुभ, कल्याण, मंगल तथा श्रेय के पर्याय है। वे विभिन्न कलाओं तथा सिद्धियों के अधिष्ठाता हैं। वे योग विधा और नाट्यशास्त्र कला के जनक है4 । उनके द्वारा 108 प्रकार की नाट्य–मुद्राओं की सृष्टि की गयी है। विभिन्न शक्तियों से सम्प्रन्न होने कारण उसे 'महाशक्ति' या 'महादेव' कहकर पुकारा गया है।

भगवान शिव का एक रूप (रूद्र) प्रलयकारी है। अपने इस रूप में वे श्मशान, रणक्षेत्र तथा मृत्यु स्थानों पर निवास करते हैं और मुण्डमाला धारण किये हुए भूत–प्रेतगणों से घिरे रहते हैं। वे साक्षात महाकाल हैं और उन्हीं के भू–विक्षेपमात्र से महाप्रलेय की विनाशलीला होती है। पतजंलि के महाभाष्य में कई बार शिव का उल्लेख हुआ है। दक्षिण भारत के प्रमुख राजवंशो–चालुक्य, पल्लव, राष्ट्रकूट एवं चोल आदि के कुछ शासकों ने भी शैव धर्म के विकास को प्रोत्साहित किया। राष्ट्रकुट नरेश कृष्ण द्वितीय (752–772 ई०) ने एलोरा के कैलाशनाथ मंदिर का निर्माण करवाया5 । चोल शासक राजा राजराज प्रथम शिव का अनन्य उपासक था। तंजौर में उसने राजराजेश्वर का शैव मदिर बनवाया। उसका पुत्र राजेन्द्र चोल भी शिव के अनन्य भक्त था। उसने अपनी राजधानी में वृहदेश्वर मंदिर बनवाया। चोल शासक कुलोतुंग प्रथम (1070–1122 ई०) भी कट्टर शैव था। पल्लव काल में शैव धर्म का प्रचार–प्रसार नयनार संतो द्वारा किया गया। शैव मत के अनुयायी नयनार कहलाते थे। नयनार संतो की संख्या 63 बताई जाती है। जिसमें अप्पार तिरूज्ञान सम्बन्दर, सुन्दर मूर्ति एवं मणिकवा चगर का नाम प्रमुख है। अप्पार का एक और नाम तिरूणा बुक्करण था। अप्पार ने अपने समकालीन पल्लवराजा महेन्द्र वर्मन प्रथम (610–640 ई०) को शैव धर्म में दीक्षित किया था। नयनार संत सम्बन्दर ने बौद्ध आचार्यों को शास्त्रार्थ में परास्त किया था। सुन्दरमूर्ति को 'ईश्वर मिश्र' की उपाधि दी गयी थी। इनके भक्तों में निम्नवर्गीय लोग, ब्राह्मण एवं महिलाएँ भी थी। नयनारों में कराइकल नामक महिला, आद्नटू का निम्न जाति का एक व्यक्ति 'नन्दन' एवं पल्लवों का सेनापति 'सिडेतोणडर' भी थे। तिस्मुदई नामक ग्रंथ में शिव के पद संकलित है। विभिन्न शैव सम्प्रदाय का विश्लेषण हम निम्न प्रकार से कर सकते है–

पाशुपत शैव सम्प्रदाय– यह शैव सम्प्रदाय सबसे प्राचीनतम सम्प्रदाय है। इसकी उत्पत्ति ई०पू० दूसरी शती में हुई थी। इसके संस्थापक लकुलिश थे। यह एक लोकप्रिय सम्प्रदाय था। महाभारत में इसका उल्लखे सांख्य, योग, पंचरात्र के साथ हुआ है। उमापति, भूतनाथ शिव श्री कण्ठ ने पाशुपत ज्ञान की शिक्षा दी। अर्थात इस मत का संस्थापक कोई मनुष्य नहीं था। भण्डारकर महोदय ने पौराणिक एवं अभिलेखीय तथ्यों के आधार पर शिव के 28 वाँ अवतार लकुलिश को इस मत का स ंस्थापक माना है। इस सम्प्रदाय के प्रमुख मदिर नपेाल के काठमाण्डु में स्थित पशुनाथ का मदिर है। वायुपुराण और लिगं पुराण के आधार पर भण्डारकर महोदय का विचार है कि महान शैव संत लकुलिश महेश्वर के अन्तिम अवतार थे, जिन्होंने कायावरोहण अथवा कायावतार (गुजरात के बड़ौदा जिला के दभौई तालुक में कारवान) लिया था। उनको चार शिष्य थे। जिनका नाम था– कुशिक, गर्ग, मित्र और कौरूष्य। इसी प्रकार की सूचना चालुक्य नरेश शारंग दवे के चिन्न प्रशस्ति से मिलती है, जो मूलरूप से काठियावाड़ के सोमनाथ मंदिर में उत्कीर्ण था। यह लेख इस बात का उल्लेख करता है कि लकुलिश के चार शिष्य थे कुशिक, गार्ग्य, कौरूष्य और मैत्रेय। इन चारों ने पशुपतमत के चार भिन्न भिन्न सम्प्रदाय की स्थापना की6 । इन दो विभिन्न स्त्रोतो से प्राप्त एक ही सूचना के आधार पर भण्डारकर महोदय ने मथुरा स्तम्भ लेख के कुशिक को लकुलिश के प्रथम शिष्य मानते हैं जिनके उत्तराधिकारी पराशर, कपिल और उदित थे। गार्ग्य के वंशज काठियावाड़ में सब गये जबकि कुशिक के वंशज मथुरा में। भण्डारकर महोदय ने आचार्यों की पीढ़ियों की गणना के आधार पर कुशिक के गुरु लकुलिश का समय द्वितीय शताब्दी के प्रारम्भ में रखते हैं। वे एक पीढ़ी के लिए 25 वर्ष का समय निर्धारित करते हैं7। इस प्रकार लकुलिश का समय 105–30 ईव् होता है। चन्द्रगुप्त द्वितीय का मथुरा स्तम्भ लेख जो 61 गुप्त संवत् (380 ईव्) का है, जो मथुरा क्षेत्र में पाशुपत सम्प्रदाय की एक शाखा लकुलिश सम्प्रदाय के अस्तित्व पर प्रकाश डालता है। इसमें दो शिवलिंग स्थापित किये जाने का उल्लेख है। ये उपमितेश्वर और कपिलेश्वर की मूर्तिया थी जिनका नामाकरण उद्धिताचार्य के गुरु भगवत उपमित विमल और उनके गुरु कपिलविमल के नाम पर था जिन्हें गुव्वांयतन में उदिताचार्य द्वारा स्थापित किया गया। आर्य उदिताचार्य भगवत कुशक की दसवीं पीढ़ी में और भगवत पराशर की चौथी पीढ़ी में हुए। इसका उद्देश्य था अपने गुरुओं के लिए पुण्य एवं गौरव प्राप्त करना। इस लेख में महेश्वर आचार्यों की चार पीढ़ियों का उल्लेख मिलता है जो क्रमशः इस प्रकार है– पराशर, कपिल विमल, उप मित विमल और उदिताचार्य। यह उल्लेखनीय है कि इस लेख में कुशिक का उल्लेख हुआ है परन्तु पराशर और कुशिक के बीच के आचार्यों के नामों का उल्लेख नहीं
मिलता है।

मथुरा स्तम्भ लेख के सम्बन्ध में दूसरी उल्लेखनीय बात यह है कि इस लेख में उदिताचार्य को आर्य कहकर सम्बोधित किया गया है, जबकि अन्य आचार्यों कुशिक, पराशर, कपिल विमल एव ं उपमित विमल को केवल भगवत कहा गया है। भण्डाकर महोदय का मान्यता है कि आचार्यो ं के नामों के पहले भगवत जैसा शब्द लगना उनके स्वर्गवासी होने का घोतक है।

चूँकि उदित जीवित थे इसलिए उन्हें केवल आर्य कहा गया। इस सन्दर्भ में भण्डारकर महोदय 'अभिधान चिन्तामणि' का हवाला देते हुए कहते हैं 'आर्य' स्वामी आदि। उनके विचारानुसार उदिताचार्य निसंदेह अपने गुरुओं के दो स्मारकों का आर्य अथवा स्वामी थे जिसे उन्होंने गुव्यांयतन में स्थापित किया था। पतंजलि ने शिव भागवतों का उल्लेख किया है। दूसरी ओर लकुलिश का समय द्वितीय शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में रखा जाता है, जो लकुलिश पाशुपत मत के संस्थापक थे। पाशुपतो से मिलता जुलता शिव सम्प्रदाय का अस्तित्व लकुलिशके आगमन के पूर्व भी स्थित (मौजूद) था। ऐसा प्रतीत होता है कि लकुलिश ने तत्कालीन शैव मत को एक सैद्धान्तिक व्यवस्था दी और इस प्रकार वे पशुपत मत के संस्थापक के रूप में विख्यात हुए। महाभारत काल में भी पशुपति को शिव का स्वरूप माना गया है। अर्जुन ने शंकर की उपासना करके उनसे अविजेय पशुपत अस्त्र प्राप्त किया था। महाभारत के एक सन्दर्भ में दक्ष प्रजापति द्वारा शंकर ने दक्ष को पाशुपत व्रत धारण करने के लिए कहा था। महाभारत काल में पंचरात्र मत के समान पाशुपत मत को भी मान्यता प्राप्त हो चुकी थी। महाभारत में पंचरात्र तथा पाशुपत दोनों धर्मो के उपाख्यान वर्णित हैं। इसी सन्दर्भ में पाशुपत व्रत के महात्म् (महत्व) का वर्णन करते हुए उसे समस्त वर्णों तथा आश्रमों के लिए मोक्षप्रद बताया गया है। महाभारत काल में वैष्णव सम्प्रदाय की तरह शैव सम्प्रदाय भी चारों वर्णों के लिए अपने द्वार खोल दिये थे। शूद्र भी अब शैव मत की अनुयायी हो सकते थे। महाभारत में चारों वर्णों को महादेव की स्तुति सूत्त पाठ करने की अनुमति दिया गया है।

शैव सम्प्रदाय के पुराण साहित्य से ज्ञात होता है कि पाशुपत मत का अस्तित्व बहुत पुराना है। अनेक ऋषि मुनियों ने इस मत को धारण किया था। अगरत्य, दधीचि, विश्वमित्र, शतानन्द, दुर्वासा, गौतम, ऋत्यश्रृंग, उपमन्यु, और बादरायण व्यास शिवोंपासक थे। वादरायण व्यास ने केदारखण्ड की दिव्य तपोभूमि में महाज्ञानी योगी घंटाकर्ण से पाशुमत धर्म की दीक्षा ली थी। घंटाकर्ण उनका नाम इसलिए प्रचलित हुआ क्यो ंकि उनके दोनों कानों के पास दो घण्टें बँधे हुए थे। वे इतने कट्टर शिवभक्त थे कि अन्य शब्द कानों में पड़ते ही अपना शिर हिला देते थे, जिससे कि घंटो की ध्वनि से शिव नाम के अतिरिक्त दसूरा शब्द न सुनाई दे।

परम् शिवज्ञानी घंटाकर्ण से दीक्षा प्राप्त कर वादरायण व्यास काशी में जाकर बस गये थे। महाज्ञानी घंटाकर्ण के काशीवास के अनेक स्मारक आज भी काशी में स्थित है 8 । वर्तमान काशी के नीची बाग मोहल्ले में (जो सम्प्रति घंटा कर्ण के नाम से जाना जाता है) घंटाकर्ण (कर्ण घंटा) नामक तालाब आज भी विद्यमान है, जिसके एक किनारे पर व्यास जी का मंदिर स्थापित है। इस मंदिर की एक मूर्ति में घंटाकर्ण हाथ में शिवलिगं धारण किये हुए हैं। इस दृष्टि से यह मंदिर और तालाब आज भी अपने ऐतिहासिक महत्त्व के लिए विख्यात है।

निष्कर्ष :–

उपर्युक्त तथ्यों से स्पष्ट होता है, कि शैव सम्प्रदाय भारत के सबसे प्राचीन सम्प्रदाय है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र से पता चलता है कि मौर्यकाल में शिव पूजा प्रचलित थी। गुप्तशासक चन्द्रगुप्त द्वितीय का प्रधानमंत्री वीरेसेन शैव था। उसने उदयगिरि पहाड़ी पर शैव गुफा का निर्माण कराया था। गुप्तकाल में ही भूमरा का शिव मंदिर एवं नचना कुठार का पार्वती मंदिर निर्मित किया गया। इस काल में पुराणों में लिंग पूजा का भी उल्लेख मिलता है। सम्भवतः लिंग के रूप में शिवपूजा का प्रचलन गुप्तकाल में था। वाणभट्ट के हर्षचरित में कहा गया है कि थानेश्वर के प्रत्येक घर में शिव पूजा होती थी। हर्षवर्द्धन काल में आये चीनी यात्री ह्वेनसांग वाराणसी को शैव धर्म का प्रमुख केन्द्र बताया है। राजपूत काल (800–1200 ई०) में भी शैव धर्म उन्नति के शिखर पर था। चन्देल शासको ने खजुराहों में कंदरिया महादेव मंदिर का निर्माण कराया है। कालिदास, भवभूति, सुबन्धु एवं वाणभट्ट जैसे विद्वान शैव धर्म के ही उपासक थे।

संदर्भ सूची :–

[1] .जे०एन० बनर्जी– डेवलपमेण्ट ऑफ हिन्दू आइकोनोग्राफी, पृ०–456–57

[2] . वही, पृ०–457, जे०आई० एस०ए० 111, पृ०–36–44, पृ० टप्प्ए चित्र–9

[3] . मथुरा म्युजियम कैटलॉग, न० 652, 770, 899, 2528, 2661

[4] . क्रमांक 35, पृ० 167–68, प्लेट–1, चित्र 9,10, 13, 14

[5] . जे०य ू०पी०एच०एस० ग्प्प्ए पृ०–29–31

[6] . कल्याणी दास– अर्ली इन्सक्रिप्संस ऑफ मथुरा ए स्टडी, पृ०–86

[7]. ए०एस०आई०आर० (डब्ल्यू), 1919–20, पृ०–104–5

[8] . डी०सी० सरकार– सेलेक्ट इन्सक्रिप्संस, पृ०–338.